को पस्त कर तमाम बुतों और बुतखानों को शिकस्त कर उन्हें पैरों से कुचल डालेंगे और हिन्दुओं की तमाम खूबसूरत नाज़नीनों को गिरफ़ार कर हज़रत खलीफ़ा साहब दामइकबालहु की खिदमत में रवाना कर देंगे।

रानी—दूत, निस्सन्देह आप के सेनापति ने अपने योग्य बात कही—वे स्त्रियों का ऐसाही सत्कार करते हैं। परन्तु उनकी सामर्थ्य न हुई कि आज क्षत्रियकन्या के सन्मुख स्वयं आकर यह कहते, नहीं तो इसी क्षण उनका सिर देह से भिन्न कर दिया जाता। किन्तु दूत को मारना उचित नहीं है इसी कारण आप के ये वचन सह लिये गये (क्रोध से) बस अब तू जाकर उस नारी जाति के अपमानकारी से कह दे कि क्षत्रियसन्तान यवनों की नाईं इतने भाग्यवान नहीं हैं कि वे अपनी शय्या-सहचरी का भी विश्वास न करें और बन्दियों की नाईं उन्हें अन्तःपुर में बन्द कर रक्खें। क्षत्रियकन्या बानरी की नाईं घर घर नृत्य करके यवनपुत्री की नाईं सुख के लोभ अथवा प्राण के भय से प्रेम की मर्य्यादा भङ्ग नहीं करती। चाहे यह आलोर नगर एक दिन श्मशान भूमि होजाय तथापि एक क्षत्रीपुरुष या एक क्षत्रीनारी के जी-

वित रहते यह स्थान कभी भी यवनों की अधीनता स्वीकार नहीं करेगा। दूत, अब मैं तेरे इन अशिष्ट वाक्यों को अधिक नहीं सुन सकती, तू—इसी समय यवन-सेनापति के पास जाकर कहदे कि वे युद्ध के लिये प्रस्तुत हो—मैं शीघ्र उसकी आयुष्य समाप्त करूंगी। [सिंहासन से उठ खड़ी होती है।

एल०—हमारे हुजूर जङ्ग से खौफ़ नहीं खाते फ़कत आपकी बेहतरी के लिये उन्होंने मुझे भेजा था। बेवक़ूफ़ लोग अज़ख़ुद आफ़त को अपने सिर बुलाते हैं।

[गर्व के साथ प्रस्थान—सब जाते हैं।

—✲✲✲—

तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान मंत्री का गृह—बाहर की बैठक।

मंत्री०—(चिन्ता से टहलते हुये) ओह! अपने पर आपत्ति आने से मनुष्य की बुद्धि स्थिर नहीं रहती। मैं सिन्धुदेश का मंत्री हूं—बुद्धि की कुशलता से कठिन से कठिन कार्य्य भी साधन करता हूं, किन्तु अब लों इस समान्य से विषय में कृतकार्य्य न हुआ! कितने पत्र मैंने छिपा लिये तथापि इस अबोध बालिका के प्रति सेनापति का विराग किसी प्रकार उत्पन्न न कर सका। मेरी कन्या में ऐसा क्या रूप

ऐसा कौन सा गुण है कि जिसे देख सेनापति इतने मोहित हो गये—हमारे निष्कलङ्क कुल में कलङ्क लगाने को उद्यत हुये ! । इस समय भी पत्र !—न जाने इस पत्र में क्या है —

(दहिने हाथ में छुरी और बायें हाथ में पत्र लिये हुये सुनीति का प्रवेश ।)

पापिष्टा, राचसि,—क्या पितृवध की इच्छा है ? तो अब, मैं तुझे कदापि वारण न करूंगा; कुलकलङ्क देखने की अपेचा प्राण देनाही अच्छा है । खड़ी क्यों हो गई ? आ, कलेजे में छुरी मार, अब यह कष्ट असह्य हो गया—कन्या होकर पिता की यंत्रणा शेष कर ।

सुनी०—(बाष्पावरुद्ध कंठ और अश्रुपूर्ण लोचन से) पिता जी, मैं पापिष्टा नहीं, राचसी नहीं—आपही की स्नेहमयी कन्या हूं । सुनीति पिता के रक्त से हाथ कलङ्कित करने नहीं आई, किन्तु पिता के निकट आत्मघातिनी होने आई है । यह मेरे भाग्य का दोष है कि उस स्नेहमयी कन्या पर पिता का ऐसा सन्देह है ।

[शोक निमग्न होकर पृथिवी पर पतन ।

मंत्री—(निकट आकर उद्विग्नचित्त से) सुनीति ? (हाथ

से अपना मस्तक ठोक कर) हा! यह क्या, यह तो बोलतीही नहीं!

सुनीति—(मृदुस्वर से) पिता जी, तनिक जल दो (सम्मुख के पात्र से जल ले कर मन्त्री देते हैं) हा विधाता, मेरी मृत्यु क्यों न हो गई? क्या मेरे भाग्य में आत्म हत्या का महापाप लिखा है?

मंत्री—सुनीति, पुत्रि! क्यों ऐसी अमंगल बात कहती है? तुझे क्या हुआ है?—आत्मघातिनी क्यों होवेगी?

सुनीति—सो क्या आप को विदित नहीं है?

मंत्री—तू जो आत्मघातिनी होने कहती है इसका क्या कारण है?

सुनीति—स्त्रियों का हृदयही प्रधान है—प्राण की अपेक्षा भी प्रणय की माया अधिक है। आज आप मेरे प्रणय पथ के विरोधी हो कर मेरे मृत्यु का कारण होते हैं।

मंत्री—सुनीति, तू अपने पिता के कुलगौरव को मत भूल—सिन्धुराज्य के मंत्री की कन्या हो कर अयोग्य बात मुख से मत कह।

सुनीति—पिता जी, आप के सम्मुख मैं कदापि कोई अयोग्य बात न कहूंगी। सिन्धुराज्य के मंत्री सर्वस्वापहारी वा परपीड़क नहीं हैं—उन्होंने कभी किसी की स्वाधीनता हरण नहीं किया—तो क्या वे इस

समय इस असहाया वयस्था कन्या की स्वाधीनता हरण करेंगे ?

मंत्री०—सुनीति, तु वयस्था निस्सन्देह है परन्तु तेरी बुद्धि अबलों कच्ची है—तेरा मंगल किस बात में है तू नहीं जानती। पिता के उपदेश पर उपेक्षा मत कर—पिता ही तेरे एकमात्र पूज्य और एकमात्र पितृप्रेम के पात्र हैं।

सुनी०—निस्सन्देह पिता मेरे पितृप्रेम के पात्र हैं किन्तु प्रेम की विभिन्नता भिन्न २ प्रकार की है—स्नेह, भक्ति, बन्धुत्व और प्रेम इसके अनेक भेद हैं।

मंत्री०—तो क्या बन्धुत्व के लिये पिता की अभक्ति करेगी ? क्या यही कन्या का धर्म्म है ?

सुनी०—यह सुनीति सर्व सुख को जलाञ्जलि देने को प्रस्तुत है किन्तु पिता की अवमानना कदापि न करेगी।

मंत्री०—यदि तेरा मन और मुख एक हो तो स्वीकार कर कि तू हमारे पवित्र कुल में कलङ्क न लगावेगी—सेनापति से कदापि विवाह न करेगी।

सुनी०—(कातर स्वर से) आप उनके प्रेमपथ को उन्मुक्त कीजिये यदि विवाह में आप को ऐसाही हठ है तो सुनीति कदापि दूसरी बात न करेगी। आप की

कन्या केवल प्रेम का अधिकार चाहती है, हृदय की संतृप्ति चाहती है—और कुछ नहीं चाहती।

[अभ्युत्थान।

मंत्री—अरी अबोध बालिके! सेनापति को छोड़ क्या इस जगत् में दूसरा कोई भी तेरे प्रेम का उपयुक्त पात्र नहीं है। माधवीलता आम्रतरु का आश्रय लेती है, बबूर वृक्ष का नहीं।

सुनी०—मनुष्य का हृदय गुण से ही खिंचता है, केवल कुल से नहीं। मैं सेनापति को छोड़ और किसी को नहीं जानती, वेही मेरे हृदयेश्वर हैं। मैं उन्हें छोड़ दूसरे किसी को वर के इस शरीर और हृदय को कदापि अपवित्र न करूंगी, बरन सदा क्वारी रहनाही स्वीकार करूंगी। इतने पर भी यदि आप की सम्मति न हो तो इसी क्षण इस छुरी से आत्महत्या कर अपने कुलकलङ्क की शङ्का दूर करती हूं।

(आत्महत्या के लिये छुरी उठाना, और मंत्री का हाथ पकड़ लेना।)

मंत्री०—(स्नेह से) पुत्रि, यह दुःसंकल्प परित्याग कर, मैं कन्याहत्या का पातकी न होऊंगा अब मैं तेरे प्रणय में बाधा न दूंगा। तू निस्संन्देह सेनापति को पत्र लिख।

सुनी०—(सजलनयन) पिता जी, मैंने निर्लज्ज हो कर अनेक बात कही हैं आप अपने पितृस्नेह से इस अबोध बालिका का अपराध क्षमा कीजियेगा। सेनापति का दूत पत्र के निमित्त आया है उसे यह पत्र दे दीजियेगा, मैं जाती हूं। [जाती है।

—***—

चतुर्थ गर्भाङ्क।

स्थान—आलोर नगर का राजपथ।

(सेना के कई पताकाधारी हाथ में पताका लिये और डंका तथा तुरहीवालों का बाजा बजाते हुये प्रवेश)

पता०—बाजा ज़ोर से बजाओ, जिसमें लोग अच्छी तरह सुनें।

तुरही वा०—सबेरे से तो बजा रहे हैं, बजाते २ छाती फट गई इसपर भी कहते हैं कि ज़ोर से! जानो मैं आदमीही नहीं हूं और न मेरा आदमी का बदन है।

(कुछ दूर पर एक ब्राह्मण और एक सैनिक कर्म्मचारी का प्रवेश।)

ब्रा०—कहिये महाशय! यह बाजा कैसा बजता है? क्या राज्य गृह में कोई महोत्सव है?

सैनि०—हां एक प्रकार का महोत्सवही है (कुछ मंद हास्य से) किन्तु फलाहार की जगह नहीं है।

ब्रा०—(सविस्मय) यह कैसी बात, ! राज्य गृह में महोत्सव हो और फलाहार की जगह नहीं ? यह क्या ? फिर इस गरीब ब्राह्मण के उदरपूर्ण का क्या उपाय होगा ? आप कुछ उपहास तो नहीं करते ?

सैनि०—आप ब्राह्मण हैं आप से उपहास करना क्या सम्भव है ?

ब्रा०—यह भी यथार्थ है, किन्तु यह कलिकाल है पृथिवी पाप से परिपूर्ण है। नहीं तो ब्राह्मण अब तक भूखा है, कोई सुध लेने वाला नहीं ! (व्यग्र भाव से) देखिये महाशय तो क्या एक भी ब्राह्मण के लये भी भोजन नहीं मिल सकता, क्या इतनी भी जगह नहीं है ?

सैनि०—महाशय, यह कोई क्रियाकाण्ड नहीं है।

ब्रा०—अभी आपने महोत्सव कहा और फिर कहते हैं कि कोई क्रियाकाण्ड नहीं है ! ब्राह्मण से ऐसी झूठ बात ?

सैनि०—ब्राह्मण देवता, क्रोध न कीजिये मैं कुछ भी मिथ्या नहीं कहता।

ब्रा०—(क्रोध से) नहीं, भला आप मिथ्या क्यों कहेंगे आप तो सत्य के अवतार हैं ! ।

सैनि०—(स्वगत) न जाने ब्राह्मण के दिन का भूखा है, क्षुधा से अत्यन्त कातर है कुछ देना चाहिये (जेब से कुछ निकाल कर—प्रकाश) देवता जी, यह लो।

ब्रा०—(हाथ पसार कर) आपकी दीर्घायु हो। महाशय, यदि आप उपहास नहीं करते तो स्पष्ट कहिये क्या बात है।

सैनि०—यवनों के साथ युद्ध का सामान हो रहा है।

ब्रा०—युद्ध ! युद्ध ! ऐं—ऐं ?

सैनि०—डरिये मत। इसमें कोई भय की बात नहीं है। शत्रु अत्यन्त बलहीन हैं।

ब्रा०—(मस्तक पर हाथ मलते २) न—न—भय तो नहीं है तो फिर आपने महोत्सव क्यों कहा था ?

सैनि०—क्षत्रियों के लिये युद्ध से बढ़कर और क्या महोत्सव होगा। बहुत दिन बिना युद्ध के बीत गये—अस्त्र इत्यादि का काम न पड़ने से वे सब भी मलिन हो गये हैं, अनेक दिनों की युद्ध की प्यास अब यवनों के रक्त से बुझाई जायगी। इन दिनों किले में रात दिन भीड़ लगी रहती है सेना के लोग उत्साहपूर्वक आते जाते हैं—रण की तयारी कर रहे हैं—चमकते हुये शस्त्रों को यदि आप देखें तो समझ सकें कि इससे बढ़कर महोत्सव कोई नहीं होसकता।

ब्रा०—(स्वगत) इसमें इस दरिद्र ब्राम्हण को कुछ लाभ नहीं, उलटी क्षति है। युद्ध आरम्भ से समाप्ति पर्य्यन्त भिक्षा के लिये बाहर निकलना भी गया (प्रकाश) और कुछ अमंगल तो न होगा ?

सैनि॰—डरपोक यवन जाति से अमंगल की आशंका! यवनों को बड़ा अहङ्कार हो गया है!—यह सब अहङ्कार अब चूर्ण होगा। एक एक यवन का सिर काट काट कर शृगाल और कुत्तों के मुख में फेंक देंगे। यह अस्त्र— (म्यान से तलवार निकालना)

ब्रा॰—(डर के पीछे भाग और चिल्लाकर) निरापराध दरिद्र ब्राह्मण है!—इसकी रक्षा कीजिये।

सैनि॰—ब्राम्हण देवता! आप क्यों डरते हैं? मैं तो केवल आपको दिखलाता हूं कि इसी अस्त्र से सहस्त्र यवनों का मुण्डछेदन करूंगा, पृथिवी पर यवन नाम का चिन्ह भी न रहने पावेगा—न रहने पावेगा।

(पीछे से बहुत से सिपाहियों का "न रहने पावेगा"—न रहने पावेगा" कहते हुये प्रवेश)

सैनि॰—सैन्यगण, तुम लोग आगे चलो और इस जयनिनाद करने वाले तुरही के संग अपनी जयध्वनि को मिलाकर समग्र सिन्धुवासियों को एक बेरही जगा दो।

ब्रा॰—यह क्या आपही की सेना है?

सैनि॰—हां मैंही इनका अधिनायक हूं।

ब्रा॰—ये लोग कहां जांयगे?

सैनि०—यह जो उड़ती हुई राजपताका और बजती हुई तुरही इधर आगे २ जाती है उसी के साथ समग्र सेना सिन्धूराज्य के अस्त्रधारी मात्र को स्वदेश रक्षा के निमित्त निमंत्रण देने बाहर निकली है।

ब्रा०—आप क्या इनके संग जांयगी?

सैनि०—हां।

ब्रा०—तो आइये (स्वगत) देखो ये सब इधरही आती हैं—क्या कहती हैं ज़रा आगे बढ़कर सुन लूं।

सैन्यगण—(एक स्वर से) जो कोई क्षत्री हो, वैश्य हो, राजा हो धनी हो, दीन हो, ज्ञानी हो, मूर्ख हो, बालक हो चाहे वृद्ध हो, जिसने एक बेर भी अस्त्र चलाने का अभ्यास किया हो, वह स्वदेश रक्षा में प्रस्तुत होय—तीक्ष्ण शस्त्र को लेकर समर क्षेत्र में प्रवेश करे, दुराचार यवनों के रक्त से तलवार रँगे—कोई डरपोकों की नाईं घरमें लुकियो मत—लुकियो मत नहीं तो स्वदेश की स्वाधीनता जायगी—जायगी,—जायगी, स्त्री जाति का मान जायगा—जायगा,—जायगा· यवन लोग वीरनाम के योग्य नहीं हैं:—वे निष्ठुर—दस्यु—घातक हैं—उन्हें पात्रापात्र का विचार नहीं है—बालक और वृद्धों के रक्त से उनकी तलवार कलङ्कित होती है। सिन्धूराज्य के गृह-

लक्ष्मी ने यही रक्षाबन्धन गांठा है, कि जहां जो वीर पुरुष हो शस्त्र लेकर बाहर निकले।

श्रा०—(आश्चर्य से) यह कैसा वाक्‌चतुर है! कैसा मोहिनी मंत्र जानता है! देश की समय प्रजा को एक बारही इसने मोह लिया है! देखो इन्होंने राखी बांधी है—इसे क्या मृत्यु का भय नहीं है? चिंउटियों की नाईं जलती हुई आग में ये कूदने को प्रस्तुत हैं। कैसे मूर्ख है,—अरे पहिले अपना प्राण कि पहिले स्त्रीजाति का मान! शास्त्र में लिखा है—कि "आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि"—शास्त्र के ज्ञानहीन मूर्ख शास्त्र की आज्ञा न मानकर इसी प्रकार अपना प्राण आपही देते हैं।

[राजमार्ग से चला जाता है।

—***—

पञ्चम गर्भाङ्क।

(सरोवर के तीर कुन्दलता, विरजा, देवला, इत्यादि नारीगण कमर पर कलस लिये खड़ी हास्य परिहास्य करती हैं।)

कुन्द०—(तुरही का शब्द सुन कर) यह कैसा बाजा? (कुछ दूर देख कर) यह राज पताका कैसा?

बिर०—क्या आश्चर्य है! तू क्या अबलों सोई है? सत्री की कन्या हो कर राज्य का हाल नहीं जानती? (कौतुक उपेक्षा से) नहीं सखि तेरा क्या अपराध है? नूतन प्रणय की धूम है तू भला कैसे जानेगी?

कुन्द०—सखी तुझे केवल ठट्ठाही सूझता है! ठट्ठा करना सहज न होता है! जिसके शरीर में कभी कांटे की भी छिलोर नहीं लगी वह दूसरे के शरीर का अस्त्र-घाव देख कर हँसाही चाहै।

बिर०—जिस प्रणय में डूबने से देश के प्रति ममता नहीं रहती, देश का दु:ख और विपद् भूल जाता है, केवल "हा प्राण नाथ"! "हा प्राण बल्लभ!" कहते २ समय बीतता है, उस प्रणय को बिरजा हृदय में स्थान नहीं दे सकती। ईश्वर करे मुझे यह दुर्गति कदापि न भोगनी पड़े।

देव०—बहिन, जन्म मृत्यु और बिवाह बिधाता के अधीन है इसमें अपनी इच्छा नहीं चलती। बिधाता की इच्छा होने से माता पिता भी कुछ नहीं कर सकते।

बिर०—किन्तु मैं तो कर सकती हूं!

कुन्द०—तू तो झगड़ा लगानेवाली है—क्या दूसरा झगड़ा लगाया चाहती है? एक काम में तो मुझे सात हाथ जल के तले डुबा दिया, अब कह क्या चाहती है?

बिर०—युद्ध की तयारी होती है।

कुन्द०—सो तो जानती हूं—पर यह सब क्यों होता है?

बिर०—(हाथ मुंह चमका के) नया स्वामी पाकर घर में छिपा रक्खा है, तिसपर पूछती हैं कि यह सब क्यों होता है।

कुन्द०—तू जो घूम फिर के बार बार वही बात कहा करती है, तुझे क्या डाह होती है? कह तो तुझे भी कोई खोज ला दूं।

देव०—मैंने अपने बुड्ढे स्वामी से इतनाही सुना है कि युद्ध के लिये लोगों को पकड़ने वास्ते राजगृह से चारो ओर लोग छुटे हैं, इन्हें भी वे पकड़ा चाहते थे परन्तु वे तो बड़ी बुद्धिमता से निकल भागे।

बिर०—हां! भला वैसा बीरपुरुष और कहां मिलता! बहिन, तुम्हारे स्वामी युद्ध करने ही योग्य है!

देव०—सखी, तेरी बयस उभड़ती है, तेरे संग बात करना आफ़त है। (कुन्दलता से) देख बहिन तेरे शरीर में तो अबलों व्याह के फल चन्दन की सुगंध आती है। तेरे पति देखने मे स्वामी कार्तिक हैं—गुण में भी वैसे हैं, देखो बहिन, चची का पुत्र युद्ध की बात सुनतेही तलवार खींच लेता है, पर तू उसे युद्ध में मत जाने देइयो, समझा बुझा कर घर में रख।

बिर०—हां यह अच्छी बात है। (कुन्दलता से) तू अपने स्वामिकार्तिक को घर में बांधरख-पुत्र लाभ होगा।

कुन्द॰—(देवला से) बहिन, यह तो उनकी इच्छा है, भला मैं बांध कर कैसे रक्खूंगी ?

बिर॰—क्यों प्रेम की सिकली से बाँध न ?

देव॰—(कुन्दलतासे) कैसी मूर्ख लड़की है। अरे स्वामी घर का मनुष्य ठहरा तो फिर उसके रखने का उपाय क्या पूछना ? यदि तू नहीं जानती तो मेरे पास आ, मैं सिखा दूंगी। मैं चाहूं तो अभी उस बुड्ढे के द्वारा सब को बन्दर की तरह नचा दूं।

बिर॰—बहिन, तू बुड्ढे बाबा के गोद की स्त्री ठहरी, अंधे की छड़ी—जिधर चलाओ उधरही चलता है। उसका स्वामी जवान ठहरा वह भला कैसे सुनेगा ?

देव॰—जवान हो चाहे बुड्ढा हो संसार मात्र स्त्री के वश है। सब की कीलकांटा स्त्री ही है।

कुन्द॰—सखी, यह कुछ अन्याय नहीं है कि वे रण में जाया चाहते हैं और मैं रोकती हूं ?।

देव॰—(बिस्मित होकर) युद्ध में प्राण देने जाना—यह अन्याय नहीं है ?

कुन्द॰—युद्ध में जानेही से सब का प्राण जाता हो कुछ यह नहीं है। पर जो बिधाता की ऐसी ही इच्छा है तो उसे कौन खण्डन कर सकता है। स्वदेश रक्षा के निमित्त प्राण देने में क्षत्रीपुरुष कभी भय नहीं

करते और क्षत्रीकन्या भी उन्हें कुलधर्म के पालन करने से निषेध नहीं करती। [अश्रुत्याग।

विर०—सखि, यह बात क्षत्रिय कन्या के योग्य नहीं, उन्हें उत्साह दिलाओ।

देव०—(कुछ ठट्ठे से) क्या आश्चर्य है! स्वामी युद्ध में प्राण दे और उसे निषेध न करे—उलटा उत्साह दिलावे! क्षत्रीकन्याओं को तो मानो विधवा होने ही में सुख है। ठीक है भई! स्वामी के आधीन रहने में बड़ा कष्ट है!

विर०—(उत्तेजित भाव से) डरपोक अथवा कापुरुष स्वामी के शय्या पर सोने की अपेक्षा वैधव्य में अधिक सुख है।

कुन्द०—(उत्तेजित भाव से) क्षत्रीकन्या सब यह सह सकती है, विधवा होने पर वह सतिधर्म की रक्षा करना जानती है, वह कदापि अपने स्वर्गबासी पति के शय्या को कलङ्कित नहीं करती।

देव०—(क्रोध से) तो क्या यह धर्म्म केवल क्षत्रियकन्या ही जानती है? ब्राह्मण कन्या नहीं? ब्राह्मणों की इतनी निन्दा अच्छी नहीं है, शीघ्र इसका फल पाओगी। [प्रस्थान।

विर०—भीरु लोग केवल शाप देनाही जानते हैं,। चलो चलें। [दोनों जाती हैं।

तृतीय अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

स्थान—युद्धक्षेत्र।

(मुसलमान सेनापति के डेरे के पास कई एक सिपाही बैठे हैं।)

यूसफ़खां—(शीघ्रता से खेमें के बाहर निकल कर) कुछ पर्वाह नहीं, हथियार बांधो।

जैनखां—अरे क्यों भई यूसफ़? क्या है?

यूसफ़ खां—है क्या? यह हिन्दुओं का मुल्क हमारा है काफ़िर हिन्दुओं को अब मुसलमान करेंगे, उनकी तमाम दौलत व हश्मत लूट लावेंगे, उनकी पीठ पर चाबुक लगा कर उन्हें ज़मीन चटावेंगे और हम लोग आराम मे लहर काटेंगे।

जैनखां•—अबे चुप रह—एक बारगीही जो इस क़दर खुशी मे आगया कह तो क्या हुआ?

यूसफखां•—हिन्दुओं के सिपहसालार को घूस देकर अपनी तरफ़ लाने के लिये आदमी भेजे गये हैं—अब, देखना है कि क्योंकर वह हिन्दूरानी क्षत्रियों की बेटी—मुकाबला करती है; अब उसका हिन्दूपन छुड़ावेंगे—उसे अपने ईमान पर लावेंगे (कुछ सोच कर) और अगर—(सहसा चुप हो जाता है)

जैनखां०—क्यों भई यूसुफ़ चुप क्यों हो रहा ? हां और अगर क्या—?

यूसफ़खां०—(कुछ उचाट भावसे) और कुछ नहीं ; अपनी बीबी के लौंडी के लिये दो तीन छोकड़ियां ले चलूंगा।

जैनखां०—बेवकूफ़ कहींका !—अबे वे निहायत खूबसूरत होती हैं—शादी न कर—लौंडी क्यों बनाता है ?

यूसफ़खां०—उनकी खूबसूरती का ज़िक्र तो यार मैंने भी सुना है। लोग कहते हैं कि जयसिंह की बीबी गोया बिहिश्त की हूर है। (दीर्घ निश्वास लेकर) मगर हम क्या उसके पाने की उम्मेद कर सकते हैं ?

जैनखां०—तो फिर कौन पावेगा ?

यूसफ़खां०—सिपहसालार और खलीफ़ा साहब !

जैनखां०—अरे वह कितनी लेगें। हिन्दुओं मे बहुतेरी नाज़नीन हैं।

यूसफ़खां०—अरे उनके यहां कुछ गिनती है, जितनी पावें सभी ले जावें (खेद के साथ) बड़े आदमी होने में दोस्त बड़ी लहर है। काज़ी मुल्ला का डर नहीं रहता, ये सब फ़कत मुफ़लिसोंही पर खींच खांच लगा सकते हैं। कुरान मे लिखा है कि छ से ज्यादा शादी मत करो मगर बड़े २ शेखजी के ज़नाने मे

भी देखिये तो छ हजार से भी ज्यादा बीबियां निकलेंगी इस मे कुछ गुनाह नहीं है। फ़कत हम गरीब मुफ़लिसों कोछ की जगह सात करनेही से आफ़त है—काज़ी साहब की मुट्ठी गरम करना पड़ता है।

जैनखां०—(संदेह से) मगर यार इसमे क्या कुछ आराम है ? मेरी समझ मे तो जो इतनों की मुहब्बत चाहता है वह एक की भी मोहब्बत नहीं पा सकता।

यूसफखा०—(कातर स्वर से) भई, शादी चाहे एक करो, चाहे दस करो औरतों के दिल का पता लगता नहीं। ये जिसवक़ जिसके पास रहती हैं उसीकी तारीफ गाती हैं, उसके मुकाबिल गोया दुनियां मे वह किसी को चाहतोही नहीं, दम भर न देखने पर गोया कयामत हो जायगी, मगर उसके वफ़ात पाते ही उधर कब्र की मट्टी भी सूखने नहीं पाती कि वह दूसरा आश्ना तलाश कर लेती हैं।

जैनखां०—(कुछ विरक्त होकर) तो क्या यह फक़तउन्ही का कुसूर है आपका कुछ नहीं ? आप क्या उनसे कुछ मुहब्बत रखते हैं ? वे तो भला कब्र की मिट्टी भी सूखने देती हैं मगर आपतो उनके कब्र के पेश्तर क्या, निगाह के रूबरूही नई शादी कर लेते हैं। जो दूसरे से मुहब्बत नहीं रखता तो क्या दूसरा कभी

उससे मुहब्बत रख सकता है ? वे भी इनसान का दिल रखती हैं।

यूसफखां०—(क्रोध से) क्या औरतों का भी दिल इन-सान सा है ? बेवकूफ ! अबे बतला तो कि मुसल्मानों की कौन सी किताब में यह बात लिखी है। तू का-फ़िरों के मुल्क में आकर एकबारगी लामज़हब हो गया ?

एक सिपाही —शेख जी हिन्दुओं के मुल्क में आकर हिन्दू हो गये हैं इन्हें एक हिंदू बीबी व्याह कर दो। जान पड़ता है कि इसी लालच से इन्होंने आजतक शादी नहीं की।

जैनखां०—(अन्यमनस्क होकर) कुछ बहुत नुकसान नहीं है। हिंदू की औरतें मोहब्बत करना जानती हैं, शौहर के वास्ते जान तक दे डालती हैं।

यूसफखां—इसमे क्या शक है, हिंदू निहायत होशियार होते हैं जब आप मर जाते हैं तो बीबी को भी साथ ले जाते हैं, जीतेही इनसान को आग मे जला कर मार डालते हैं।

जैनखां०—मगर वे जबरदस्ती तो किसी को भी आग याने चिता मे नहीं डालते। मैं सूरत तबदील कर

बेशुमार मुकामों पर देख चुकाहूं, सती अपनी राजी खुशी शौहर के साथ जलती है।

यूसफ़खां०— बदन से तो वे ज़बरदस्ती नहीं करते मगर सास्तर से तो करते हैं। भोली भाली औरतों को सास्तर का खौफ़ दिखला कर अपना काम चला लेते हैं। हमारे कुरानशरीफ में भी कोई शरह ऐसी होती तो बेहतर होता। भई में जो पेग़म्बर मरता तो बीबी को लेकर कब्र मे दफ्न होता!

एक सिपाह०—(जैनखां से) कहिये शेख जी! हिंदू बीबी से शादी करियेगा तो दाढ़ी क्योंकर रखियेगा? हिंदू की औरतें तो दाढ़ी से बड़ी नाराज़ होती हैं।

(नेपथ्य में घंटा बजता है।)

सब०— चलो चलो, पहरे का वक़्त हो गया [प्रस्थान।

—✻✻✻—

द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान—युद्धक्षेत्र।

(डेरे में टहलते हुये सेनापति मंत्रिकन्या का पत्र पढ़ते हैं)

"वीरपुरुष मेरा पत्र न पाकर तुमने जो आक्षेप किया है सो मैं निठुर हो सकती हूं किन्तु तुम्हें भूल नहीं सकती। तुम युद्धक्षेत्र में भी मुझे नहीं भूलते

यह तो मेरा परम सौभाग्य है किन्तु प्रणय के लिये अपना कर्तव्य कर्म्म मत भूलना। लोगों को ऐसा अवसर न मिले कि वे यह कह सकें कि सिन्धुदेश के सेनापति ने एक क्षत्रियकन्या के प्रेमबश होकर युद्ध में इस देश की स्वाधीनता यवनों के पैर तले छोड़ दी। यदि स्वदेश रक्षा के निमित्त मुझे भी भूलना पड़े तो इसी में मङ्गल है इसके लिये मैं कदापि कातर न होऊंगी। मैं तुमसे प्रेम रखती हूं इसी से मैं सुखी हूं कुछ उस प्रेम का बदला प्रेम पाने से सुखी नहीं। मैं सदा पत्र लिखकर तुम्हारे कर्तव्य में विघ्न नहीं किया चाहती; अतएव अपराध हो सो क्षमा करना"। स्त्रियों का यह निस्वार्थ प्रेम निस्सन्देह यथार्थ है, वे दूसरे के प्रत्याशा से प्रेम नहीं करतीं परन्तु अपनेही सत्य और शुद्ध प्रेम से प्रसन्नबनी रहती हैं, किन्तु सुनीति केवल अपना निस्वार्थ प्रेम ही मुझे नहीं जताती, उसका हृदय स्वदेश की मङ्गल कामना से जैसा व्यस्त है उसका प्रमाण भी इसीपत्र से मिलता है। क्षत्रियों के निकट निजदेश प्राण से भी अधिक प्रिय है और इसी कारण सुनीति स्वदेश से भी सहस्र गुण प्रिय है। हा! मंत्रिकन्ये! यदि तू हमारे हृदय का भाव जानती तो इस सा-

मान्य सी बात के लिये कदापि ऐसा न कहती। जो जीवन तुझे अग्राह्य होगा, जातीय कलङ्क का कारण होगा, मैं उस घृणित तुच्छ जीवन को लेकर क्या करूंगा? यदि यवनों के युद्ध में मेरा प्राण भी जाय तौभी मुझे इस बात से सन्तोष होगा कि मैं तेरी प्रीति और स्वदेश का आशीर्वाद लेकर मरा। प्रिये! तेरी प्रीति ने इस समय मृत्यु को मेरे निकट मधुर कर दिया है, अब मुझे मृत्यु का कुछ भी भय नहीं है। अब मुझे कोई भय या किसी प्रकार का लोभ जीत नहीं सकता—अब मैं अजय हूं।

(एक रक्षक का प्रवेश।)

रक्षक—बीरवर, एक सन्यासी आप से भेंट करने की इच्छा से आये हैं।

सेनाप०—अच्छा, उन्हें ले आ। (रक्षक का प्रस्थान) (स्वगत) इस युद्धक्षेत्र में सन्यासी का क्या काम है? जगत का शुभाशुभ कोई भी समाचार इनसे छिपा नहीं है। मेरे विषय में कोई बात होगी, बिना प्रयोजन ब्रह्मचारी कदापि इतनी दूर न आये होंगे। (कुछ उद्विग्न होकर) क्या कोई अमङ्गल सम्वाद तो नहीं है?

(सन्यासी को लेकर रक्षक का पुनः प्रवेश)

सन्यासी—सेनापति महाशय की सुबुद्धि हो।

सेनापति—यह सेवक प्रणाम करता है।

(सन्यासी का हाथ उठाकर आशीर्वाद देना)

सन्या०—महाशय, मुझे कुछ आपसे एकान्त में कहना है।

सेनापति—(रक्षक से) तू इस समय बाहर चला जा।

रक्षक—जो आज्ञा।

(रक्षक का प्रस्थान।)

सेनाप०—देव, यह संग्राम स्थान यवनरक्त से दूषित है, आपने किस गुरुतर कारण के लिये अपने इस पवित्र पदकमल को इस स्थान के आगमन से कलङ्कित किया ?

सन्यासी—आपकी मङ्गलकामनाही इसका कारण है।

सेनाप०—इस अधीन पर आपका अत्यन्त अनुग्रह है। आपकी जो आज्ञा हो मैं करने को प्रस्तुत हूं।

सन्यासी—साधु ! साधु ! क्षत्रियसन्तान कदापि मिथ्या आचरण नहीं करते, विशेषतः आप ब्राह्मण की आज्ञा कभी अग्राह्य नहीं करेंगे ! तो यदि आप अपना मङ्गल चाहें तो युद्ध का संकल्प परित्याग करें।

सेनाप०—देव, इस अधीन की अशिष्टता क्षमा कीजिये, मैं युद्ध का सङ्कल्प परित्याग कर अपना मङ्गल नहीं चाहता, मेरा यही सङ्कल्प है कि यातो यवनों का नाशही कर डालूंगा अथवा अपनाही शरीर युद्ध में दे दूंगा।

सन्यासी—देवतागण इस युद्ध से प्रसन्न नहीं हैं।

सेनापति—जो देवता लोग स्वदेश के घोर उपद्रव-कारियों के प्रति अस्त्रचालन से निषेध करते हैं उन देवताओं के प्रसन्नता की अपेक्षा क्षत्रीलोग कदापि नहीं करते।

सन्यासी—सेनापति महाशय, आपने यौवनकालोचित गर्व्व से वृथा देवधर्म्म का अपमान किया।

सेनाप०—क्षत्री सन्तान के निकट स्वदेश सबसे बढ़कर पूज्य है और उसकी रक्षाही उसका परम धर्म्म है। यदि उस कुलधर्म्म की रक्षा करते वह नरक भी जाय तो उसके लिये वही स्वर्ग है।

सन्यासी—तो क्या आप विचारते हैं कि आप अकेले अपने ही बाहुबल से इस देश की रक्षा करलेंगे? हा! अत्यन्त गर्व से मनुष्य अपनेही को भूल जाता है।

सेनाप०—मैं अपने बाहुबल से इस देश की रक्षा न भी कर सकूं, किन्तु जब लों इस बाहु में एक विन्दु भी रक्त का रहेगा तबलों स्वदेशविरोधी यवनों के विरुद्ध अस्त्र चलाने से मैं कदापि शान्त न होऊंगा।

सन्यासी—आपकी मृत्यु समीप है, नहीं तो आप ब्रह्मचारी का वचन क्यों अस्वीकार करते?

सेनाप०—देव, मैं आपका वचन अस्वीकार नहीं करता, जो आज्ञा हो कहिये; किन्तु क्षत्रियसन्तान मृत्यु से

भय नहीं खाते, वे पराधीन होने की अपेक्षा मृत्यु की समीपता को उत्तम समझते हैं।

सन्यासी—यह कुछ मेरी ही इच्छा नहीं है, बिधाता की भी यही इच्छा है कि आप मुसलमान सेनापति के अनुगत होजांय—कुललक्ष्मी सहाय होंगी और आप की बड़ी सम्पत्ति होगी।

सेनाप०—(क्रोध से) क्या आर्य्यसन्तान के मुख से ऐसी यवनोचित बात? ब्रह्मचारी जी, तुम्हारा ब्रह्मतेज जाता रहा, अब तुम हमारे पूज्य नहीं हो। अरे अनार्य्य, क्या कभी कोई क्षत्रियसन्तान धन के लोभ से शस्त्र बन्द करता है? क्षत्री लोग कुछ, धन मान और अन्न की आशा से अस्त्रशिक्षा नहीं लेते किन्तु स्वदेश की रक्षानिमित्त ही उनका यह सब परिश्रम होता है। कापुरुष! इच्छा होती है कि इसी क्षण अस्त्र से तेरा शरीर दो टुकड़े कर दूं।

सन्यासी—(भयभीत होकर) दोहाई अल्लाह की, माफ़ कीजिये, मेरी गर्दन न मारिये।

सेनाप०—(क्रोध से) क्या यह भेष बदले है? औरे म्लेच्छ, तेरी इतनी क्षमता हुई कि तू क्षत्रियों के डेरे में ब्राह्मण बेषधारण करके आया है? अभी तुझे दो टूक करता हूं, बोल तू क्यों यहां आया था? और किसने तुझे भेजा है?

सन्यासी—(भय से) जी, मैं—मैं—मैं—

सेनाप०—बोल, मैंमैं क्या करता है ?।

सन्यासी—जी, मैं सेनापति का गुलाम हूं, महम्मद कासिम का खादिम हूं मेरी जान बख्शिये।

सेनाप०—बोल, क्यों भेजा है ?

सन्यासी—जी, आ—आ· आ—

सेनाप०—फिर आ आ आ—बोल क्यों भेजा है ?

सन्यासी—आपको घूस देकर अपनी तरफ़ करने के लिये।

सेनाप०—(क्रोध से) अरे भीरु, तुझे बध करके मैं अपने खड्ग को कलङ्कित न करूंगा। चत्री लोग कापुरुषों पर अस्त्र नहीं चलाते। नीच! तू जाकर अपने सेनापति से कह कि चत्री सेनापति तेरे समान चुद्राशय और बिश्वास घातक नहीं है। पृथिवी के समग्र ऐश्वर्य्य के पांव पर लोटने से भी चत्री लोग कदापि स्वदेश के बिरुद्ध शस्त्र नहीं उठाते। दुष्ट नरक के कीड़े! यदि तू अपना भला चाहता है तो इसी चण यहां से भाग।

(भय से सन्यासी का कृतिम बेष का गिरना और शीघ्रता से भगना।)

—●●●—

तृतीय गर्भाङ्क ।

स्थान—युद्धक्षेत्र ।

चारो ओर से क्षत्रीसेना का आगमन और कोलाहल ।

(अनेक शस्त्रों से सुसज्जित और रक्षित सैन्यगण कतार से खड़े हैं ।)

गंगादीन सिंह—(शस्त्रधारी आमंत्रित सैन्यगण से) सैन्यगण, बाल्यावस्था में आप लोगों ने अस्त्रचालन का अभ्यास किया था, किन्तु बहुत दिनों से वह असि स्यान से बाहर न निकली और न कोई ऐसी आशा थी कि किसी दिन इस अभ्यस्त विद्या की परीक्षा होगी—परन्तु समय पाकर आज वह सौभाग्य का दिन आगया और आप लोगों ने जो भीरु पुरुषों की नाईं उपेक्षा न कर वास्तविक क्षत्री सन्तान की नाईं इस सुअवसर का आदर किया है इस्से आप लोगों का परम गौरव है । यदि यह शरीर युद्धक्षेत्र में नाश हो तो कुछ हानि नहीं तथापि आप लोग एक डग भी पीछे पैर नहीं देते । सैन्यगण, आप लोग श्रेणीबद्ध होकर रणनिपुण और रक्षित सेना के पीछे खड़े रहिये ।

[सैन्यगण का वैसा ही करना ।

भीमसिंह—(रक्षित धनुर्धारी बीरों से) तुम लोग इस असिधारी सैन्य के पीछे खड़े होकर शत्रुओं पर निरन्तर ऐसी बाणवृष्टि करो कि उन्हें स्वास लेने का भी समय न मिले।

धीरसिंह—(आमंत्रित धनुर्धारी बीरों से) इतने दिन तक आप लोगों के बाण दूरतर आकाशगामी पक्षियों के शरीर भेद करते थे किन्तु आज यह सुअवसर उपस्थित है कि आप अपनी आश्चर्य्य कुशलता से शत्रुओं का शरीर भेदन कर क्षत्रीकुल का गौरव बढ़ाइये। क्षत्री लोग कुछ रक्षित सेनाही द्वारा देश-रक्षा नहीं करते, आप लोग म्लेच्छ जाति को यह परिचय भली भांति दीजिये कि प्रत्येक क्षत्रीपुत्र बिपत् काल में स्वदेशरक्षा करने में उद्यत रहता है। सिद्धिदाता गणेश आपलोगों के सहायक हैं, आपलोग रक्षित धनुर्धारीगण के पीछे खड़े रहिये।

[सैन्यगण का वैसाही करना।

रणवीरसिंह—(अश्वारोही सैन्यगण से) जब समस्त क्षत्रियों का बल परास्त हो तो उस समय देशरक्षा में तुम्हाराही अवलम्ब है। यातो इस उन्मुक्त खड्ग से देशरक्षा करना, नहीं तो समरभूमि में असिशय्या पर शयन करना। अब अपने स्थानपर हो जाव।

(अश्वारोहियों का वैसाही करना।

(अश्वपर आरूढ़ सेनापति का प्रवेश —और सैन्यगण का असिसंचालन द्वारा अभिवादन ।)

सेनाप०—सैन्यगण, तुम लोगों ने अपना २ निर्दिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया अब कार्य्यसाधन का समय है। यह बात कोई न भूले कि आज राजेश्वरी स्वयं सेनासमूह के साथ विराजमान होंगी।

(कमर में खड्ग लटकती, हाथ मे धनुर्बाण लिये घोड़े पर आरूढ़ रानी का प्रवेश।—सेनापति तथा सैन्यगण का मस्तक झुकाना और असिसंचालन से अभिवादन करना।

रानी०—(सैन्यगण से) सैन्यगण, आज इस क्षत्रीकन्या का परमसौभाग्य है कि देश के समस्त बीरपुरुष उस के निमंत्रण से स्वदेशरक्षा के लिये यहां उपस्थित हैं। युद्ध, क्षत्रीसन्तान का कुलधर्म्म है—युद्ध का अवसर आने से उन्हें उत्तेजना देने की आवश्यकता नहीं पड़ती, उनका शस्त्र सदाही देशरक्षा के लिये खुला रहता है। किन्तु आज केवल स्वदेश रक्षाही नहीं वरन आर्य्यजाति की धर्म्मरक्षा और आर्य्यकन्या मात्र की मानरक्षा तुम्हारे हाथ है। कौन ऐसा कुलाङ्गार, कौन ऐसा पुरुष क्षत्री कुल में होगा जो यह इच्छा

रखता हो कि परपीड़क यवनजाति की जय-पताका भारतभूमि के वक्षस्थल पर स्थिर हो ! आर्य्यों का सनातन धर्म्म विलुप्त हो ? अथवा आर्य्यनारी यवनों से पददलित और अपमानित होकर यवन कन्या की पदसेवा में नियुक्त हों—(सेना में से उच्चस्वर से—नहीं नहीं ऐसा कापुरुष कोई नहीं है—कोई नहीं—कोई नहीं) हां मैं भी कहती हूं कि "कोई नहीं है" देखो तुम्हारी इस ध्वनी से आकाश भी बोलता है कि "कोई नही है", समग्र दिशा कहती हैं कि "कोई नहीं है", पाताल भी गंभीर स्वर से कहता है कि "कोई नहीं है"। (ऊपर से शङ्ख निनाद और "नहीं" "नहीं" का शब्द) यह सुनो पुनः देवतागण स्वर्ग से तुम्हें धैर्य्य देकर कहते हैं कि "कोई नहीं है"। तो अब विलम्ब करने का प्रयोजन नहीं है, स्वदेश की प्रीति और देवताओं का आशीर्बाद हृदय मे धारण करके, बीरगण निर्भय होकर समर में शत्रुओं को ललकारो उनकी अन्तिम शय्या इसी तृणाच्छादित समर भूमि में बिछी है बस उन्हें शय्यापर सुला दो—सुलादो—सुलादो !

सैन्यगण के मध्य से—सुलादेंगे, सुलादेंगे—जय भारतकी जय ! जय सिन्धुदेशाधीश्वरी की जय !।

(दूसरी ओर से सेना के सहित यवनसेनापति का प्रवेश)

(सैन्यगण में से जयनिनाद—अल्लाह अकबर ! फ़तह ख़लीफ़ा साहब की, फ़तह हो बसरा के बादशाह की)

कासिम—(सिपाहियों से) देखो यारो, आगे बढ़ो, आज से यह ज़रखेज़ हिन्दोस्तान तुम्हारा हुआ—बस अपना कब्ज़ा करो, हिन्दोस्तान की हशमत, लूटो काफ़रों के बुतों को पैरों से कुचलो, इस नंगी तलवार के ज़ोर से सादिक दीने-महम्मदी की रौनक बख़्शो और हिन्दुओं की औरतों को गिरफ़्तार कर अपने गुलामी मे लाओ ।

रानी०—सैन्यगण, बस अब इन नीचाशय यवनवाक्यों को कदापि अधिक मत सहन करो इसी क्षण इनकी पापजिह्वा को भेदन करो ! ।

(सैन्यगण का अस्त्रचालन और बाणनिक्षेप और दोनों सेना का घोर युद्धारम्भ ।)

(रानी और क्षत्रियसेना का "बढ़े चलो" "बढ़े चलो" करना—और महम्मद कासिम तथा उसकी सेना का "अल्लाह अकबर" शब्दध्वनि ।)

(रानी के दक्षिण पैर में बाण का लगना और कई एक सैन्यनायक का आकुलता सूचित करना)

रानी०—(उच्चस्वर से) कुछ चिन्ता नहीं, यह साधारण

बाण है मैं इसे अभी निकाल फेंकती हूं (बाण का बाहर निकाल कर दिखलाना) यह देखो शत्रु का सामान्य बाण मेरी कुछ भी हानि नहीं कर सकता। सैन्यगण, तुम लोग आगे बढ़ो, यह देखो शत्रु लोग प्राण भय से पीठ दिखाने लगे, तुमारे तीक्ष्ण अस्त्र धार से वे लोग कदलीखम्भ की नाई काट काट कर गिर रहे हैं।

(मुसलमान सेना में "भागो, भागो" का शब्द और भागने की चेष्टा।)

रानी०—सैन्यगण, आगे बढ़ो, पकड़ो और मारो शत्रुओं को, किन्तु सावधान रहो वे अस्त्रपरित्याग करते हैं, जो कोई अस्त्रपरित्याग कर शरणागत हो वा अस्त्र-द्वारा पूर्वही घायल हो उस पर कदापि अस्त्र मत चलाना। क्षत्रियों का शस्त्र उनके बध के निमित्त है जो सम्मुख रणभूमि में आवें, शरणागत और आर्तों के लिये नहीं।

(मुसल्मान सेना को खदेड़ते हुये क्षत्रियसेना का प्रस्थान)

—***—

चतुर्थ अंक ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान—आलोर नगर का राजगृह ।

(बहुत से स्त्री और पुरुष बैठे हैं ।)

रानी॰—(निराशा के साथ) दैव जिस्से प्रतिकूल है उसके जय पाने की क्या आशा है? हम लोगों ने युद्ध पर युद्ध जीते हैं, क्षत्रीवीर पुरुषों ने अतुल पराक्रम से बार बार शत्रुओं को परास्त और आहत किया, किन्तु कौन जानता था कि इस बीच में यह बिपत् उपस्थित होगी, रसद् की कमी होजायगी ? और भोज्य पदार्थ के पुनः एकत्र करने का उपाय न लग सकेगा ? मनुष्य की शक्ति जो कर सकती है, सिन्धु देश के बीरपुरुष और इस राज्य की बीरकन्याओं ने उसके करने में कुछ शेष न रक्खा । बीरपुरुष अनाहार पर भी कातर नहीं हुये प्रत्युत उन्होंने बार बार युद्धक्षेत्र में शत्रुओं पर आक्रमण किया । बीरनारियों ने स्वयं उपवास कर युद्धक्षेत्र में आहार भेज दिया, बालक और बालिका पर्य्यन्त ने बिना कातर हुये अपने २ आहार में से कुछ २ भेज दिया । सुन्दर केश-

वाली स्त्रियों ने भी अपने केश काट कर वीरों की प्रत्यञ्चा में लगा दिया और अङ्ग के आभरण उतार कर अस्त्र बना डाले । धन्य वीरपुरुषो ! धन्य ! धन्य वीरनारियो ! धन्य है तुमारे स्वदेशानुराग को तुमने स्वदेशरक्षा के निमित्त जो इस प्रकार त्याग स्वीकार किया उस्से क्षत्रीकुल का गौरव बढ़ा, स्वर्गबासी पितृगण तृप्त हुये और यह कार्य्य क्षत्रीधर्म्म के उपयुक्त हुआ ! हा ! आक्षेप इसी बात का है कि इतना साहस और इतना यत्न सब निष्फल हुआ! शत्रु लोग क्षत्रियों के पराक्रम से परास्त हुये किन्तु दैवबल ने क्षत्रियों के पराक्रम को भी परास्त किया। यह आक्षेप का समय नहीं है, चिन्ता करने का अवसर नहीं, इस समय दोही बात हैं या तो यवनों की आधीनता स्वीकार करो या प्राण परित्याग करो, दोनों में जो उत्तम और श्रेष्ठ जान पड़े करना चाहिये ।

भीड़ में से०—आप की क्या इच्छा है ?

रानी०— मेरी इच्छा में तो मृत्यु श्रेष्ठ है ।

भीड़ में से०--तो क्या हम लोगों की दूसरी इच्छा है ? क्या क्षत्रीसन्तान हो कर मृत्यु के भय से हम स्वाधीनता बेंचेंगे ? धर्म्म को छोड़ देंगे ?

रानी०—यदि तुम सभों की एक इच्छा हो, तो उठो—पुनः कोष से असि बाहर करो और यवनसैन्य में प्रवेश कर के दिखलाओ कि क्षत्री लोग कैसे प्राण परित्याग करते हैं।

सैन्यगण—यह लो हम लोग उठे, और यह तलवार निकाली और अभी शत्रुओं के दल में प्रवेश करते हैं, किन्तु आपकी रक्षा का क्या उपाय होगा?

रानी०—मेरी रक्षा तो स्वयं अग्निदेव करेंगे, मैं उनमें प्रवेश कर सदा के लिये आपत्ति से दूर होऊंगी, यवनों का कोई भी अत्याचार मुझे स्पर्श न कर सकेगा (दासी से) जा चिता लगाने की तयारी कर।

सैन्यगण—क्या सब की यही इच्छा है?

वधू०—दासी की इच्छा—इन्हीं की आज्ञानुसार है।

अन्य स्त्रियां—हम लोगों की भी इच्छा चितारोहण और क्षत्रीकन्या के उपयुक्त धर्म्मपालन की है।

सैन्यगण—तो अब हम निश्चिन्त हुये किन्तु बलकोंका क्या उपाय हुआ?

सब कन्यागण—असहाय बालकोंकी सहायता माता की गोदही है, हम उन्हें अपने हृदय पर धारण करेंगी और वे इसी गोद में सदा के लिये निद्रित होंगी।

[अभ्युत्थान।

सैन्यगण—क्षत्रिनारियो, अश्रु को रोको जिस्से तुम्हारे अश्रु हमारे कर्तव्य कर्म में विघ्न न करें। जाओ बालकों को शीघ्र यहां बुला लाओ, इस शेष जीवन के समय एक बेर उनका मुखचुम्बन और उन्हें आलिङ्गन कर बिदा होंवे (वाष्प से कण्ठ रुक जाता है।)

(कुलकन्या सब आंचल से अश्रु पोंछती हैं और तदुपरान्त लड़कों को लेकर पुन: आती हैं—दस ग्यारह और बारह वर्ष के कई एक लड़के कतार से खड़े हैं।)

सब बालक साथही—माता, देखो हमारा समर वस्त्र, देखो धनुर्बाण और तलवार, हम भी पिता जी के साथ ही युद्ध में जांयगे, क्षत्रियों के बालक पराधीनजाति की नाईं दासत्व नहीं करते, घातक के हाथ से प्राण नहीं देते किन्तु युद्धक्षेत्र में वीर की नाईं प्राण समर्पण करते हैं। माता, देखो तलवार और धनुर्बाण, देव हमारा सामरिक वेष अब विलम्ब मत करो—देव, अभी देव।

मातागण एकसाथ—(रोते रोते) पुत्र तुम्हीं कहो, माता हो कर तुम्हें कैसे हृदय पर वज्र रख कर बिदा करूं—शत्रुओं का अस्त्र अत्यन्त तीक्ष्ण है उनके बाण कठिन हैं—तुम्हारा इतने यत्नों से पालित यह कोमल शरीर भेदा जायगा और मैं माता हो कर कैसे

सहन करूंगी ? हृदय पर कैसे बज्र रक्खूंगी ? पुत्र, युद्ध में जाने और यवनों के पापहस्त से प्राण देने का कुछ काम नहीं, आ तुझे गोद में लेकर इस तापित प्राण को शीतल करूं। यह गोद का धन गोदही में रहे जिस्में जिस समय अग्नि चारो ओर से शरीर भस्म करे उस समय तेरा मुखचुम्बन करते हुये मेरा प्राण जाय।

बालकगण एकसाथ—(अश्रु पूरित नयन से) माता, नितान्त बच्चे तो तुम्हारे पास हई हैं उन्हें लेकर अग्नि में प्रविश करो और मृत्युकाल में उनका मुख चुम्बन करना; हम लोगों को युद्ध में जाने से निषेध मत करो, हम लोगों ने क्षत्रीधर्म्म में दीक्षा पाई है और अस्त्र चलाने में अभ्यास किया है तो इस समय युद्ध में प्राण देनाही हमारे लिये श्रेष्ट है। क्षत्री सन्तान किसी दूसरे प्रकार के मृत्यु की कामना नहीं करते। जिस मृत्यु से स्वर्ग का मार्ग खुलता है उस मृत्यु में विघ्न मत उत्पन्न करो।

मातागण एकसाथ—पुत्र, यह बात जिह्वा से बाहर नहीं निकलती कि तुम लोग युद्ध में जाओ, हृदय से सहा नहीं जाता, तो कैसे बिदा करूं; यदि तुम अवश्यही जाओगी तो लो यह सामरिक बेष, यह

तरवार. यह धनुर्गुण और यह लो माता का आशीर्वाद शत्रु से डरना मत, हाथ से शस्त्र फेंकना मत, और असहायों का सहायक भगवान तुम्हारी रक्षा करेगा।

सब बालक एक स्वर से।

यदपि हिमाचलशृंग होंय भूतल पै आड़े।
यदपि सूरससि खसैं धसैं जे नभ मैं ठाढ़े॥
यदपि सिन्धु एकबिन्दु होय सूखै छनमाहीं।
तदपि छत्रि के पुत्र तजैं रण मैं असि नाहीं॥
गाढ़े धर असि हाथ करैं भुज ठीक यही पन।
क नाशैं रणमांहि शत्रु कै नाशैं जीवन॥
कबहुं प्राणभय करैं नाहि नहिं रण तें भाजैं।
समरभुम्मि दै सीस ईसपुर जाय बिराजैं॥
जौन मंत्र हम लह्यो जौन हम पायो दिच्छा।
तौन आज करि गौन युद्ध मैं करैं परिच्छा॥
काटि यवन के मुण्ड झुण्ड के झुण्ड लगावैं।
कुण्ड रुधिर की पूरि हरषि घर को फिर आवैं॥
लगैं मातु के चरण होंय जिय मैं तब धीरा।
ताके हित क्यों अम्ब होय तू निपट अधीरा॥
बिदित सकल संसार बीरमाता के जाये।
रखैं देश को मान आपनो प्राण गँवाये॥
जो पुररच्छा हेतु सेतु जीवन को टूटै।

तो कछु चिन्ता नाहिं धर्म्म को पंथ न छूटै ।
शुभ मंगल आसीष हमन को या छिन दीजै ।
हृदय प्रेम सों लाय बेग अब् बिदा करीजै ॥
शत्रु पुकारैं लेत उतै धौंसा घहरांहो ।
धिक् छत्री को पूत रहै जो घर के माहीं ॥

माता गण—(अत्यन्त रोकर) पुत्र आ, एकबेर गोद में आ, दुःखिनी के गोद के धन ! गोद में आ, एकबेर गोद में आकर अभागिनी का हृदय शीतल कर । जन्म का अन्तिम आलिङ्गन और तेरा मुखचुम्बन कर जीवन सुफल करूं ! (रोते रोते आलिङ्गन और मुख-चुम्बन) हाय ! क्या इस जन्म में अब सुख भोग न करेंगी क्या इस मुखचन्द्र को फिर चुम्बन न करेंगी ? क्या हमारे इस सुख का यही परिणाम हुआ ?

(कांप कर गिरने लगना और बीरपुरुषों का आगे बढ़ कर रोक लेना ।)

बीरपुरुष गण—पुत्र, ठहरो, हम भी चलतेही हैं, हम लोग आगे २ चलेंगे. जब शत्रुओं के अस्त्र से हमारा शरीर पुनः पुनः घायल होकर बेकाम हो जायगा तब तुम लोग आगे बढ़ यवन सेना पर अस्त्र चलाना और उनसे बदला लेना । (स्त्रियों से) धैर्य्य करो और बीरनारियों के योग्य व्यवहार करो,

बिपद् में अधीर होकर अधिक बिपत् को मत बुला-ओ—यह सुनो यवन लोग ललकार रहे हैं, तुम्हारे प्रति कैसे २ अपमानित वचन बोल रहे हैं बस उन्हें अधिक इस प्रकार मत बोलने दो। इसी क्षण प्रेमा-लिङ्गन कर बिदा करो कि जो पापिष्ट तुम्हें ऐसे दुर्बचन कह रहे हैं उनका जीवन शेष कर स्वामी और पति शब्द को सार्थ करें। धिक्कार है उस कुला-ङ्गार नराधम को कि जो माता भगिनी, स्त्री, कन्या तथाच स्वदेशी वा बिदेशी कुलाङ्गना मात्र का अप-मान होते देखे और उस अपमानकारी को बिना शस्त्रदण्ड दिये यौंही जाने दे, और अपना तथा उसका रुधिर एक न कर डाले। धिक्कार है उस देश को जो स्त्रियों के अपमानकारियों। को निवास दे—और उस जाति को जो ऐसों को मनुष्य समझे। क्षत्रीसन्तान तो ऐसी जाति को पृथिवी पर स्थान नहीं दिया चाहते उनका नाम मनुष्य मात्र से उड़ा-या चाहते हैं और इसी शस्त्र के बल से उनका शरीर दो टूक करने की इच्छा रखते हैं (म्यान से तलवार निकाल कर दिखलाना) बस अब शीघ्र प्रेमालिङ्गन से अजय होकर रण में प्रवेश करेंगे।

स्त्रीगण—(निज निज स्वामी के कन्धे पर मस्तक रख कर रोते रोते) क्षणभर और ठहरिये, धैर्य धरिये,

इस जीवन के इस अन्तिम सुख को एक बेर भली प्रकार देख तो लें, जीवन सफल करें, हृदय तृप्त हो और दुःख की यातना समाप्त हो। हम सब बड़ी भाग्यवती थीं जो आप सरीखे पति को प्राप्त हुईं। हम आप के कर्तव्य में कदापि विघ्न न देंगी किन्तु ठहरिये, तनिक और ठहरिये, इस अन्तिम जीवन के समय एकबेर भली प्रकार आप का दर्शन करलें इसे बढ़ कर हमारा सौभाग्य और क्या होगा कि आप हमारे प्रति दुर्वचन कहनेवालों को दण्ड देने के निमित्त जाते हैं। आप रण को पधारते हैं, विधाता आप का मङ्गल करे। यदि इस अभागिनी के दुर्भाग्य से अमङ्गल हो तो भी कुछ चिन्ता नहीं परलोक में पुनः भेंट होगी। बस पधारिये और युद्ध में जाइये, हम आगे चल कर स्वर्गराज्य में आप के लिये सुखशय्या प्रस्तुत करती हैं।

[दृढ़ आलिङ्गन और परस्पर प्रेमप्रदर्शन।

सुनीति०—(मंत्री से) पिता जो! क्या इस समय भी इस दासी को आज्ञा न होगी? क्या इस स्नेहमयी कन्या को स्वर्गसुख से भी वञ्चित करियेगा? क्या आपकी यही इच्छा है कि मैं परलोक में भी वीर-स्वामी से भेंट न करूं? नहीं कदापि नहीं, आपका

हृदय सदा इस अभागिनी कन्या के दुःख से कातर रहा है, अब इस समय—इस जीवन की अन्तिम सीमा पर इसे दुःखिनी मत छोड़िये! मैं आप की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही हूं।

(चिता की सामग्री लिये दासी का प्रवेश।)

मंत्री—(पुष्पपात्र से माला और चन्दन लेकर) पुत्रि, यह ले यह तेरे पितृभक्ति का पुरस्कार है वह तेरे असाधारण धैर्य्य का फल है यह ले, यह माला जो चिताशय्या के लिये आई थी सोही तेरी बरमाला हो, तू आगे बढ़ कर सेनापति को हमारी आज्ञा से निस्सन्देह बर।

सुनीति—(सेनापति के गले में बरमाला डाल कर) नाथ, अब मुझे भी इस शेष जीवन के समय आप प्रथम और अन्तिम प्रेमालिङ्गन दीजिये आपके इस मधुर प्रेमालिङ्गन से जीवन पवित्र हो, हृदय शीतल हो शरीर में अमृतधारा का प्रवाह हो। यद्यपि हम दोनों यहां क्षणभर के लिये मिले हैं किन्तु आशा है कि परलोक में सदा के लिये मिलेंगे।

(आलिङ्गन की चेष्टा और सेनापति के दोनों भुजा में अचेत होकर गिरना।)

बधू०—(बिलख कर) आज भाग्यवती क्षत्री कन्याओं का कैसा शुभ दिन है कि वे प्रेम से भेंट कर निज

निज स्वामी को युद्ध में बिदा करती हैं। किन्तु हाय। आज मैं किसे इन बाहुयुगल से आलिङ्गन कर बिदा करूं? हाय! स्वामी इस समय कहां हैं आज यवन लोग हमें कैसे २ कुवाच्य कह रहे हैं, ? यदि वे जीवित होते तो क्या अपना अस्त्र दाहिर-राज की स्त्री और पुत्रवधू के अपमानकारी शत्रुओं पर न चलाकर, निज प्राणरक्षा के निमित्त कायरों की नाईं किसी बन को भाग गये होते? इससे बढ़ कर कलङ्क क्षत्रीकुल के लिये क्या हो सकता है? मैं इस दुःख को कहां रक्खूं, हृदय तो अब इस दुःख-भार को नहीं सह सकता, शरीर का सहना कठिन देख पड़ता है। जो लोग कहते हैं कि राज्य में सुख है, ऐश्वर्य्य में सुख है, स्त्रियों को गहने में सुख है, वे देख लें कि मुझे राजकन्या राजवधू होकर इनमें से किसी बात में भी सुख नहीं होता। आज यदि नितान्त कंगालिनी और भिखारिनी होने पर भी मैं प्राणेश्वर को पाऊं तो मैं इसीक्षण अपना सर्वस्व परित्याग कर सकती हूं। चाहे जो आकर राजेश्वरी बन इस समय ऐश्वर्य्य का सुख भोग करे और तब एक बेर देखे कि मेरा यह दुःख वह सकती है कि नहीं? राज्य में न्याय, और दान में दया का सुख

है, आपद्ग्रस्त को आपत्तिनिवारण में सुख है, पर जिसे इस संसार में कहीं सुख की आशा नहीं उसे मृत्यु में सुख है। इस अभागिनी को आज मृत्यु में ही परम सुख है। प्राणनाथ, एकबेर तो इस दासी को अन्तिम समय दर्शन दे जाते! मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि मुझे सदा के लिये आपने परित्याग कर दिया? सत्य है मैंने बड़ा अपराध किया, क्षमा के अयोग्य व्यवहार किया, मैंने राक्षसी की नाईं निठुर वाक्य कहे थे किन्तु आप तो निठुर नहीं हैं, आप तो इस अभागिनी से सदा प्रेम रखते थे तो अब इस समय अपना वह प्रेम क्यों नहीं दिखलाते, अपना वह दयामय स्वभाव क्यों नहीं प्रकाश करते? एकबेर—केवल एकबेर तो दर्शन दीजिये! यदि आप दर्शन नहीं देते, यदि इस तापित हृदय को शीतल नहीं करते तो यह देखो आप ही के खड्ग से हृदय को शीतल करती हूं।

[खड्ग उठाना और मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरना।]

(नेपथ्य में अल्लाह! अकबर, अल्लाह अकबर! का शब्द)

सैन्यगण—बस अब छोड़ो—छोड़ो—देखो यवन लोग आते हैं तुम लोग चिता आरोहण करो और हम अभी इनपर आक्रमण करते हैं।

(उल्कापात, विद्युतक्रीड़ा, वज्रध्वनि और भूकम्प का होना)

क्षत्रीस्त्रियां—(भयाकुल स्वर से) हे प्रभो ! यह उल्कापात कैसा ! हा ! विद्युत्—वज्रध्वनि—यह देखो समग्र पृथिवी डगमगा रही है । हा! चारो ओर असगुन हो रहे हैं, यह महाविपद् का चिन्ह है ! प्राणेश्वर (हाथ धर के) प्राणनाथ ! शान्त हो ! शान्त हो ! अब युद्ध में जाने का काम नहीं है ।

सैन्यगण एकत्र--प्रिये, क्यों डरती हो ? जितनी विपत् मनुष्य पर आना सम्भव है उन सब के एकत्र आने से भी हम युद्ध से नहीं हट सकते । कोई भी असगुन या कोई भी आशंका हमें नहीं रोक सकती, क्षत्रीसन्तान प्राण देकर भी कर्तव्य पालन करते हैं ।

नेपथ्यमें०—अल्लाहो—अकबर !

सैन्यगण०—छोडो—अब छोड़ो ।—छोड़ो—

[प्रथान ।

सब बालक—माता, चरणधूलि दो और आशीर्बाद करो, हम भी जाते हैं ।

[पदधूलि ग्रहण और प्रस्थान ।

(क्षत्रीनारियों का मुख ढक कर रोना, एक बन्दो का ऊंचे चढ़ कर युद्धक्षेत्र का देखना, और दूसरों का चिता लगाना ।)

रानी०—(स्त्रियों के प्रति) देखो चिता सज्जित है, आओ हम सब लोग पट्टवस्त्र पहिन, माला चन्दन से सुशोभित हों, और चिता की प्रदक्षिणा कर अग्निदेव की बन्दना करें।

(सब का भीतर जा कर वस्त्र पहिन, माला चन्दन धारण कर पुन: आना।)

बन्दी०—धन्य है वीरपुरुषो! धन्य तुम्हारा साहस! धन्य है तुमारी युद्ध की कुशलता। देखो, बिना शत्रु को मारे कोई भी रण में नहीं गिरता। धन्य बालको! धन्य तुम्हारी बीरता और धन्य तुम्हारी अस्त्रशिक्षा! कैसे निडर होकर शत्रुओं के प्रति अस्त्र चला रहे हैं, उधर से शत्रु भी मारते हैं और दोनों साथ ही कट कर पृथिवी पर गिरते हैं।

(स्त्रियों का चिता की प्रदक्षिणा और अग्नि की बन्दना करना)

बन्दी०—हा! कैसे खेद का विषय है, अब तो कोई भी क्षत्री बीरपुरुष नहीं देख पड़ता, सब लड़ मरे।

नेपथ्य में०—अल्ला हो अकबर!—फ़तह हो खलीफ़ा की! फ़तह हो बसरा के बादशाह की! लूटो, लूटो, पकड़ो औरतों को, पकड़ो और सीने से लगाओ!

रानी०—(व्यस्त हो कर) सब प्रस्तुत हो आओ और अग्नि में प्रवेश करो, मैं चली,—किन्तु यदि भारत में कोई भी मुसल्मान रहे तो वह स्त्रीजाति के अपमानकारियों की जिह्वा खण्ड खण्ड करे, चाहे भारत सम्पूर्ण आर्य्य कुल बीहीन हो जाय किन्तु ऐसे लोग जो स्त्रियों का अपमान करते हैं कदापि भारत में न रहें।

नेपथ्य में—पकड़ो,—पकड़ो,—जाने न पावें।

(कूद कर सभों का अग्निप्रवेश।)

[जवनिका पतन, और नेपथ्य में बाजा।

॥ इति ॥



हिन्दी रसिकों से प्रार्थना।

प्रियवर—इन दिनों हिन्दी भाषा में नाटक और उपन्यास इत्यादि की जैसी कमी है आप लोग जानतेही हैं। ऐसे ग्रंथों का होना नकि केवल दिलबहलाव और काव्यानन्द परन्तु देशहित और विद्यावृद्धि तथा नीतिशिक्षा के लिये परमावश्यक है। मैंने कई एक ग्रंथ ऐसे लिखे भी हैं और लिखता तथा अनुवाद करताही जाता हूं तथाच जहां लों बनता है दूसरे महाशयों को भी ऐसे कार्य्य में सहायता देता हूं परन्तु इस कार्य्य का साङ्गोपाङ्ग निर्वाह होना आप सरीखे देशहितैषी रसिकों के सहायताधीन है। मैं और किसी प्रकार की विशेष सहायता नहीं चाहता केवल इतनीही प्रर्थना करता हूं कि जो छोटे मोटे नवीन ग्रंथ मैं इस विषय के प्रकाश करूँ उनकी आप एक एक कापी ले कर सहायता करें, प्रण यह है कि जो ग्रंथ नापसन्द हो जाय उसे मैं वापस लेलूं। मेरे पास अनुमान २०० ऐसे सज्जनों की लिष्ट तयार है जिन के भरोसे मैंने अबतक कितनेही ग्रंथ प्रकाश किये, किन्तु विशेष प्रचार के लिये अभी और भी आवश्यकता है। आशा है कि आप अपना नाम भी उन्हीं सहायक और हिन्दीरसिकों की श्रेणी में लिखा कर इस उत्तम कार्य्य के प्रचार में यशभागी होंगे।

रामकृष्णवर्म्मा सम्पादक भारतजीवन बनारस सिटी।